ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292RNI
REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 190-192**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

दलित जीवन की प्रमुख समस्याओं को उजागर करती दलित आत्मकथाएँ

1. मनोज कुमार भार्गव
2. डॉ0 कृष्णकान्त चन्द्रा

1. शोध अध्येता, डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या 2. प्रोफेसर हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू मेमोरियल पी0जी0 कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0) भारत

Received-14.12.2024, Revised-19.12.2024, Accepted-25.12.2024 **E-mail : manojkr8693@gmail.com**

सारांशः दलित वर्ग के लिए भारतीय समाज में अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे – शूद्र, अछूत, बहिष्कृत, अंत्यज, पददलित, दास, दस्यु, अस्पृश्य, हरिजन आदि। दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है रौदा या कुचला हुआ, नष्ट किया हुआ, दरिद्र और पीड़ित, दलित वर्ग का व्यक्ति। दलित सदियों से उपेक्षित जीवन जीने हेतु बाध्य है। इन्हें वैदिक काल से ही असुर, दैत्य, राक्षस आदि उपाधियों से अलंकृत किया गया है। दलित सदियों से शोषित, पीड़ित रहा है। दलितों की पीड़ा व समस्या को हाशिए से निकालकर आधुनिक आत्मकथाकारों ने एक नई दिशा में एक नई रोशनी देने को बहुत ही साहसिक कार्य किया है।

कुंजीभूत शब्द– दलित जीवन, अंत्यज, पददलित, दास, दस्यु, अस्पृश्य, उपेक्षित, शोषित, पीड़ित, आत्मकथा, दयनीय स्थिति

डॉ0 तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' में उनकी बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था के बीच की घटनाओं का केवल चित्रण ही नहीं है बल्कि लेखक ने अपनी आत्मकथा में भारतीय समाज के विविध सामाजिक यथार्थ का अनावरण भी किया है। 'मुर्दहिया' के माध्यम से उन्होंने दलित बस्ती की जिंदगी और अनेकानेक घटनाओं के बहाने वहाँ के लोक जीवन पर भी प्रकाश डाला है। लेखक ने भूमिका में स्वयं लिखा है, ''जमाना चाहे जो भी हो, मेरा जैसा अधना जब भी पैदा होता है, वह अपने इर्द–गिर्द घूमते लोक–जीवन का हिस्सा बन ही जाता है। यही कारण था कि लोकजीवन हमेशा मेरा पीछा करता रहा। परिणामस्वरूप मेरे घर से भागने के बाद जब मुर्दहिया का प्रथम खण्ड समाप्त हो जाता है तो गाँव के हर किसी के मुख से निकले पहले शब्द से तुकबन्दी बनाकर गाने वाले जोगीबाबा, लक्कड़ ध्वनि पर नृत्यकला बिखेरती नटिनिया, गिद्ध प्रेमी, पागलबाबा तथा सिंघा बजाता बंकिया डोम आदि जैसे लोक–पात्र हमेशा के लिए गायब होकर मुझे बहुत बड़ा दुःख पहुँचाते हैं।''[1]

तुलसीराम जी ने 'मुर्दहिया' में अपने स्कूल जाने की घटना का बड़ा रोचक वर्णन किया है तथा बताया है कि पंडित के साइत देखने पर ही उनके स्कूल आरंभ का दिन तया किया जाता है। वे स्कूल में व्याप्त छुआछूत की चर्चा करते हुए समाज में दलितों की दयनीय स्थिति का मर्मातक चित्रण करते हैं। बड़ी ईमानदारी के साथ जो सवर्ण साथी या शिक्षक इनकी सहायता करते हैं। उनकी मानवीय दृष्टि और सुहृदय व्यवहार को भी उन्होंने रेखांकित किया है। 'चमरा', 'कनवा' जैसे उद्‌बोधनों को सुनने के बाद भी उनका हौसला कभी पस्त नहीं हुआ तथा शिक्षा के प्रति उनकी लगन बढ़ती गयी, जिससे उन्होंने तमाम विरोधों के बाबजूद अपने स्कूल में प्रथम आकर स्कूल के रेकार्ड को ब्रेक किया।

'मुर्दहिया' में अनेक ऐसे अपने लोकप्रिय तथा चहेते चरित्रों की चर्चा तुलसीराम जी ने की है, जिसके बिना शायद उनकी आत्मकथा पूरी नहीं होती। लोक–जीवन के ये पात्र इतने जीवन्त है कि उनके बारे में जानना दिलचस्प है। ऐसा ही एक व्यक्ति हिंगुहारा था जो हींग बेचने गाँव में आता था तथा घर–घर जाकर 'हींग के पैसा खर्रा कर' गाकर लोगों से हींग का पुराना पैसा मांगता था तथा गाँव के बच्चे उस पंक्ति को दुहराकर उसमें जीवन का आनन्द उठाते थे। इसी तरह से साल में एक बार गाँव में आने वाले सारंगी बजाकर गायन करने वाले गेरूएधारी बाबा की लोकप्रियता की चर्चा है। इसी क्रम में जोगीबाबा का किस्सा दिलचस्प है। जो कि जाति से नोनिया थे तथा लोगों को अन्दाजा था कि वे भूतपूजक थे। उनके बारे में लेखक ने बताया है उनकी सबसे बड़ी एक अतिरोचक विशेषता यह थी कि उनके सामने जिस किसी भी व्यक्ति के मुँह से जो भी पहला शब्द निकलता था, वे उसी शब्द से तीन सतर वाली कविता बनाकर एक विचित्र स्वर शैली में गाने लगते थे। जैसे किसी के मुँह से निकल गया 'जोगीबाबा', वे तुरन्त गाने लगते –

''जइसन कहत बड़ा जोगी, तइसन बढ़त बाड़े रोगी
बड़ सँसतिया सहबा राम,बड़ सँसतिया सहबा राम।''[2]

भारतीय मनुवादी सामाजिक व्यवस्था में 'अस्पृश्यता' एवं 'बहिष्कृतता' दलित जीवंत की मानों नियति है। जिस प्रकार किसी भीषणतम रोग से ग्रस्त व्यक्ति को जिस अमानवीय सामाजिक स्थितियों को झेलना पड़ता है, उसी प्रकार या उससे भी ज्यादा दलितों की घृणास्पद सामाजिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। देवेन्द्र कुमार की पोस्टिंग लेबर इंस्पेक्टर के रूप में जब निरसा में होती है, तब उसके पहुँचने से पहले ही, उसकी जाति के विषय में स्टाफ को पता चल जाता है। नतीजा, उसके घर के एक कमरे में ही रहने वाला चपरासी (जो कि सवर्ण है) उससे छुआछूत बरतता है। कौशल्या के शब्दों में – ''हम दलित समाज के हैं, यह वह जान गया था। बहुत छुआछूत मानने वाला था। छोटी जाति वाला साहब है इसलिए न वह हमारे घर का काम करेगा न हमारा छुआ खाना खायेगा, पर डटा रहेगा हमारे घर। अब उसे अपने खाने पर पैसे खर्च करने पड़ेंगे और यह बात उसे परेशान कर रही थी। वह सिर्फ हमारा दूध लाने का काम करता था। हमारा लड़का एक वर्ष का था, उसके लिए ग्वाले से दूध लाकर देता था। इस काम के लिए हम उसे चाय के लिए दूध दिया करते थे। देवेन्द्र कुमार उसे बीड़ी–तम्बाकू के लिए पैसे देता था। वह रास्ते में हमारे दूध में से किसी दूसरे आदमी को दूध दे देता था। जब उसे खर्च अखरने लगा तो उसने कुछ उपाय सोचा। वह रोज हमसे थोड़ा आटा, थोड़ा चावल, थोड़ा दाल माँगता था। उसने अपना चूल्हा अलग बनाया। खाना बनाते वक्त अगर हमारा लड़का उसके चूल्हे के पास जाता तो वह पास नहीं आने देता था।''[3]

सामाजिक पदानुक्रम में चूँकि दलित, सवर्णों से नीचे हैं, इसलिए चपरासी अपने से ऊँचे दर्जे के अफसर के साथ भी छुआछूत बरत सकता है। लेकिन जब उसी अफसर से कुछ आर्थिक लाभ प्राप्त करना हो तो तब जाति आड़े नहीं आती। कुछ इसी प्रकार का व्यवहार देवेन्द्र कुमार के मातहत क्लर्क का भी है, जो कि दफ्तर के पत्र पोस्ट करने के बजाय छिपाकर रख देता है। लेकिन जब यह बात खुलती है तब उसकी हालत खराब हो जाती है। देवेन्द्र कुमार ने उसे सस्पेंड (सस्पेंड) कर दिया। वह बहुत हाथ–पांव जोड़ने लगा। मेरे भी पाँव पकड़कर रोने लगा। मतलब होने पर ब्राह्मण जरूर पाँव पकड़ता हैं तब उसकी श्रेष्ठता गायब हो जाती है।''[4]

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

ओमप्रकाश जी ने दलित जीवन के उन तमाम कष्टदायक यातनामय अपमानजनक शोषित किए जाने के अभाव को 'जूठन' के पहले खण्ड में प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करके हिन्दी साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी। वंचित, शोषित, अमानवीय अनुभवों से गुजरते हुए जीवन–स्मृतियों को पटल पर उतारना ओमप्रकाश जी के शब्दों में – "तमाम कष्टों, यातनाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर से जीना पड़ा।" ('जूठन' की भूमिका) इस त्रासद अनुभव के बाद भी 'जूठन' का दूसरा खण्ड लिखने का साहस वही लेखक कर पायेगा जो स्वयं के जीवनानुभवों के दस्तावेज प्रस्तुत करके सामाजिक परिवर्तन को साकार रूप देना चाहता हो। अन्तर्मुख होकर चिन्तन के धरातल पर जीवनानुभवों को, गुजरे हुए उस सच को समाज के सामने प्रमाणिक रूप में रखकर समाज की प्रतिक्रियाओं के रूप में परिवर्तन का स्वरूप जानना रचनाकार का मन्तव्य रहा है। लेकिन यह दुःखद है कि वाचकों की, समाजशास्त्रियों की, आलोचकों की, लेखकों की और मित्रों की सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ सुनने के लिए आज वाल्मीकि जी हमारे बीच नहीं हैं।

जबलपुर से वाल्मीकि जी का तबादला देहरादून की ऑर्डनेंस फैक्टरी में हुआ तो चन्दा जी के साथ बड़ी खुशी–खुशी देहरादून पहुँचे थे क्योंकि देहरादून चन्दा जी का मायका है। घर की तलाश शुरू हुयी जिसमें बहुत से मित्र परिवार के सदस्य भी दिन–रात दौड़ रहे थे। लेकिन देवभूमि कहलाने वाले हिमांचल उत्तराखण्ड के देहरादून में वाल्मीकि सरनेम बताते ही मकान मालिक हाथ खड़े कर देते। जातिवाद की संकीर्णताओं में विश्वास करने वाले समाज से वाल्मीकि का यह संघर्ष लगभग महीने भर तक चलता रहा। लेकिन उन्होंने उम्मीद नहीं छोड़ी। जाति–श्रेष्ठता का घमण्ड दर्शाने में मकान मालिक को किसी की प्रकार की शर्म महसूस नहीं होती। एक ने तो इतनी सहजता से कह दिया, "देखो जी, बाद में झंझट नहीं चाहिए, हम लोग कुमाउँनी ब्राह्मण हैं, किसी डोम या मुसलमान को अपने यहाँ किराए पर नहीं रख सकते।"[5]

हर जगह से ना–ना सुनते हुए दोस्तों के साथ वाल्मीकि जी भी परेशान थे लेकिन वे झूठ का सहारा लेने को कतई तैयार नहीं थे। उनका यह तर्क कि "यदि आधुनिक कहे जाने वाले पढ़े–लिखे लोगों के इस श हर देहरादून की यह हालत है तो छोटे शहरों में तो दलितों को मकान मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता। मेरे जैसे पढ़े–लिखे व्यक्ति को यदि यह शहर स्वीकार करने को तैयार नही तो शर्मिन्दा मुझे नहीं, इस शहर को होना चाहिए।" घर ढूँढने के वक्त कुछ दोस्तों और दलित सहकर्मियों ने यह सलाह भी दी थी कि जाति छुपाने से तत्काल घर मिलता है तो क्यों नहीं इसे अपनाते? लेकिन अपना आत्म–गौरव गिरवी रखकर वाल्मीकि जी कभी नहीं चाहते थे कि झूठ का सहारा लेकर घर खोजने की जिल्लत से बच जाएँ। जातीय वर्चस्ववादी संस्कृति की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक घेरेबन्दी के पीछे अमानवीय सोच किस तरह हावी है इसको वाल्मीकि जी बड़ी ही समर्थता से अभिव्यक्त करते हैं। जनतांत्रिक अधिकारों का मजाक उड़ाने वाली इस प्रकार की मानसिकता की जड़ें इस देश में बहुत गहरे गड़ी हैं जिसे उखाड़ने के प्रयास रूप में वाल्मीकि जी अपने गुस्से पर संयम रखकर जनतांत्रिक पद्धति को अपनाते हैं। वाल्मीकि के इस अनुभव में भारतीय जाति संरचना में अस्पृश्यता और तिरस्कार से पीड़ित मानव–मन की पीड़ा उभरकर आई है।"[6]

जाति के अभिशाप को झेलते रहने के अनेक प्रसंगों को वाल्मीकि जी खुलकर लिखते हैं। भारतीय वर्ण व्यवस्था जाति संरचना पर धर्म, इश्वर, शास्त्र तथा भाग्यवाद के अमिट प्रभाव द्वारा यथास्थितिवादी नजरिए को पूर्णतः जकड़ लिये जाने के कारण हाशिए के व्यक्ति के कार्य, उसकी योग्यता, कौशल तथा विद्वता को हीनभाव से देखकर खारिज कर देना ब्राह्मणवाद की सदियों पुरानी चाल है। परिणामतः दलित व्यक्ति की बड़ी से बड़ी उपलब्धि पर भी वे हाथ ही मलते हुए दिखते हैं। वाल्मीकि जी ने स्वानुभावों को अभिव्यक्ति द्वारा समाज में पैठी जातीय भेदभाव, तिरस्कार और घृणा की संकीर्णताओं का सूक्ष्म चित्रण किया है। दलित आत्मकथा समाज को आईना दिखाकर ब्राह्मणवाद द्वारा रचे गए उन तमाम साजिशों का पर्दाफाश करती है जिसके कारण समाज का एक चौथाई हिस्सा आज तक अपने मूलभूत मानव अधिकारों से वंचित रखा गया। दलित जीवनानुभव सदियों से शोषित, पीड़ित, वंचित समाज के दर्दनाक इतिहास से हमें परिचित कराता रहा है, इस इतिहास–बोध से वर्तमान और भविष्य के प्रति सजग कदम उठाने की सोच और अपने हथियार पैने करके संघर्षों की प्रेरणा मिलती है। समतवादी सोच के प्रतिबद्ध लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि निम्नता के अपमान–बोध से भर देने वाले अनुभवों के दंश को एक बार फिर से अनुभव करने को तैयार है। इस चाह में कि परम्परावादी विचारों को ढोता यह समाज समता के मूल्य को समझ पाएगा। इसलिए जरूरी है कि हाशिए के समाज के अनगिनत अनुभव शब्दाकार लेकर साहित्य के आकाश पर छा जाएँ।"[7]

वाल्मीकि जी ने इस आत्मकथा में आधुनिकता का मुखौटा ओढ़े सफेदपोश समाज के दोहरे चरित्र को बेनकाब किया है। ऑर्डनेंस फैक्टरी के भवन–निर्माण से निकली मिट्टी के ढेर को अचानक आई धुआँधार वर्षा ने ढहा दिया जिसके नीचे दबकर ग्यारह मजदूरों की मौत हुई थी। बचाव करने वालों में मात्र कुछ मजदूर और गिने–चुने लोग ही आगे आए हैं। देहरादून निवासियों और फैक्टरी के जिम्मेदार अधिकारियों, मजदूर यूनियन के लीडरों की असंवेदनशीलता को देखकर वाल्मीकि जी की रूह काँप गई। इस प्रकार के रवैये से व्यथित होकर वाल्मीकि जी ने एक कविता लिखी थी, जिसे फैक्टरी के कवि सम्मेलन में सुनाने का उन्हें मौका मिला। कविता सुनकर सभी अधिकारी वर्ग और विशेषकर मजदूर वर्ग सन्न रह गया था। वाल्मीकि जी के अनुसार "इस कवि सम्मेलन में मेरी एक पहचान स्थापित कर दी थी। अब यहाँ मैं अजनबी नहीं था, न ही एस0सी0 जो अपने नाम के साथ 'वाल्मीकि' लिखता है। इस कविता ने मुझे एक पहचान दी थी और सरनेम की संकीर्ण सोच से बाहर निकलकर लोगों का मेरे साथ व्यवहार बदल गया था। "सृजनात्मक रचना में प्रस्तुत समता के दर्शन से मानवीय सम्बन्ध बदल सकते हैं, इस पर लेखक का दृढ़ विश्वास है। यही विश्वास लेखकीय सृजन प्रक्रिया को निरन्तर बढ़ाने और मानव–मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति लोगों में चेतना जगाने की दोहरी भूमिका का निर्वाह करता है।"[8]

हिन्दी की इन दलित आत्मकथाओं में शोषण, उत्पीड़न का अन्तहीन सिलसिला है। 'अपने–अपने पिंजरे' से लेकर 'मर्णिकर्णिका' व 'गोबरहा' तक दलित आत्मकथा लेखन की लम्बी श्रृंखला है। इन आत्मकथाओं में आक्रोश और इतिहास के कहे पन्नों को देखना–परखना दलित आत्मकथाकारों की इच्छा है, परन्तु वह अपने को अभिव्यक्त करते हुए दुःख, यातना, पीड़ा, दर्द से वह कराह उठता है। इन दलित आत्मकथाओं में दलित जीवन की मूलभूत समस्याओं को दर्शाया गया है। 'अपने–अपने पिंजरे' में दलित समाज की जिन्दगी और उनकी समस्याओं के माध्यम से एक ऐसे समय और समाज को हमारे सामने लाकर खड़ा करती है, जिसकी वास्तविकता से हम लगभग अछूते थे। अगर हम उनसे सामाजिक जिन्दगी में परिचित भी थे तो उनसे टकराने का साहस हमने कभी नहीं किया। फलतः 'अपने–अपने पिंजरे' में स्वयं मोहनदास नैमिषराय जी ने अपने जीवन के 18 वर्षों तक की कहानी को अंकित कर उस व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश भी प्रकट किया है। बचपन से जवानी तक मिले जख्मों को वे सहते आये, उन्हें संग लेकर चले, जख्मों का हिसाब–किताब रखते हुए आत्मकथा की रचना की।"[9]

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-18, No.-IV, Issues-34, YEAR-Oct-Dec. 2024

उपसंहार– आत्मकथा दलित साहित्य की विशिष्ट–विधा है जो परम्परागत साहित्यिक अवधारणाओं–मानदण्डों का विखण्डन करके नई अवधारणाएँ और मानदण्ड निर्मित करती है। दलित आत्मकथाकारों ने अपने काव्य में दलित समाज की वेदना का चित्रण किया है और उसे वेदना को जन्म देने वाली परिस्थिति विशेषकर उत्पीड़न की। दलित समाज को हमेशा आतंक के साए में रहना पड़ता है। भूख, गरीबी, अशिक्षा, अछूतपन में डूबी जिंदगी में इनका निर्वाहन हो रहा है। आज हम सभी इक्कीसवीं सदी में जीवन–यापन कर रहे हैं परन्तु आज भी दलितों की समस्याएँ कम नहीं हो पा रही है। दलित उत्पीड़न, शोषण, गरीबी, अशिक्षा, जातीय भेद–भाव, अस्पृश्यता, कुप्रथा, पिछड़ापन, अज्ञानता, आन्तरिक जातिवाद आदि ऐसी समस्याएँ हैं जो लगभग सभी आत्मकथाओं में पड़ताल करने पर पता चलता है कि समान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुर्दहिया सं0 डॉ0 तुलसीराम, पृ0 भूमिका से, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, 1वीं नेताजी सुभाष चन्द्र मार्ग, दरियागंज, नईदिल्ली
2. वही, पृ0 65
3. दोहरा अभिशाप – कौशल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1999, दिल्ली
4. वही, पृ0 103
5. जूठन – ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ0 6 (दूसरा खण्ड), राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17 जगतपुरी, दिल्ली
6. वही, पृ0 07
7. वही, पृ0 08
8. वही, पृ0 09
9. अपने–अपने पिंजरे, मोहनदास नैमिषराय, पृ0 भूमिका से, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

*****